शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

महिला सशक्तिकरण और समाज

डॉ. विमलेश यादव
एसोसिएट प्रोफेसरए समाजशास्त्र विभाग
एमएमएच कॉलेज
गजियाबाद, उत्तरप्रदेश, भारत

भूमिका

आज हम उत्तर आधुनिक दौर में जी रहें हैं लेकिन फिर भी हमें कहीं न कहीं महिलाओं के विषय में सोचने की जरूरत पड रही है। जिसका सीधा-सीधा मतलब है कि कहीं न कहीं अभी भी कोई कमी है। विचार करने वाली बात है कि भारतीय संस्कृति में महिलाओं को देवी का दर्जा हासिल है। लक्ष्मी, सरस्वती, अंबा, गौरी, सीता जैसे अनेक नामों से स्त्री को संबोधित किया जाता है, जो ज्ञान और शक्ति की देवी के साथ माता भी कहलाती है। फिर भी पुरुष प्रधान समाज सारी कमियों और खामियों को महिलाओं के ऊपर थोपकर उनको मूर्ख और कमजोर समझता है। महिलाओं के ऊपर प्राचीन काल से ही पितृसत्ता कायम रही है। इसी पितृसत्ता ने महिलाओं को कमजोर कर उनका ह्रास किया है। जिस कारण महिलाओं की आजादी पर असर पड़ा तथा उनके आगे बढ़ने का रास्ते बंद हो गए। इसलिए शिक्षा या महिला सशक्तिकरण ही एकमात्र हथियार बचा है, जिससे महिलाओं को जागरूक कर समाज में सामानता पैदा की जा सकती है। प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं के सशक्तिकरण के विविध आयामों पर चर्चा की गयी है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ और आयाम

महिला शब्द स्त्रीलिंग से जुडा है। शाब्दिकता की बात करें तो महिला को स्त्री, औरत, नारी और अंगरेजी में विमन जैसे शब्दों से संबोधित किया जाता है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है। महिला शब्द नारी के सहज एवं गरिमा के साथ सम्मान वाले पक्ष को सामने रखता है। स्त्री शब्द का आशय विस्तार करने से है। स्त्री विमर्श एक बहुप्रचलित शब्द है। डॉ. मीना शर्मा लिखती हैं “स्त्री विमर्श एक ओर स्त्री-सशक्तिकरण से तो दूसरी ओर समाज के सशक्तीकरण से जुडा हुआ है। यदि स्त्री गुलाम या पराधीन हो तो क्या कोई समाज सशक्त हो सकता है ? कभी नहीं। स्त्री-मुक्ति, स्त्री-अधिकार, स्त्री-नियति, स्त्री-चेतना, स्त्री-अनुभव, स्त्री-इतिहास और स्त्री-जीवन के तमाम प्रश्नों के उत्तर भारतीय सामाजिक संरचना परिवेश एवं सामाजिक स्थिति के भीतर से ही खोजने होंगे।”[1]

दूसरा शब्द सशक्तिकरण है। सशक्तिकरण को सीधा-सीधा मतलब किसी व्यक्ति की योग्यता से है जिसके बलबूते व्यक्ति अपने जीवन से जुडे हुए सभी फैसले स्वयं कर सके।

महिला सशक्तिकरण और सामाजिक भूमिका

भारतीय महिलाएँ केवल एक घर या परिवार को लेकर नही चलती वह पूरे समाज को अपने में समेटकर चलती है। समाज में मुख्य भूमिका के

रूप में महिलाएँ सदैव विद्वमान रहती हैं। मातृत्व और पत्नीत्व नारी की भूमिका की धूरी है। चूंकि ये भूमिकाएँ अपने में अपूर्व है। एक आदर्श स्त्री मधुर, विनम्र, स्नेही, सेवाभाव युक्त और समर्पित होती है। समाज में नारी की भूमिका संबंधी मुख्यधारा की अवधारणा संस्कृत के एक लेखक की कविता की पंक्तियों द्वारा सर्वोत्कृष्ट ढंग से व्यक्त होती है, वह "पति के लिए, माँ की तरह खाना बनाने वाली, भोजन परोसने वाली, सचिव की तरह पति को कार्य में सहायता करने वाली, चरणों की दासी, शैया पर प्रेयसी की तरह और सहनशीलता में पृथ्वी की तरह हो।"[2]

महिला के बिना हम समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते। महिलाओं का समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान है। पूरे समाज में एवं परिवार में महिलाएँ केन्द्र में विद्यमान रहकर अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करती है। परिवार के अलावा भी महिलाएँ समाज के सामने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। परिवार हो चाहे समाज दोनों ही राष्ट्र के मुख्य तंत्र है। महिलाओं का सशक्त होना राष्ट्र निर्माण को मजबूती प्रदान करता है।

राजेन्द्र यादव जी लिखते हैं, "सामंती समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिए हैं, पत्नी, रखैल और वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे सम्बन्ध को स्वीकार ही नहीं करता है। जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो कहता है पत्नी, लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता तो वह रखैल है। जहाँ वह न संरक्षण देता है न सामाजिक स्वीकृति, तो वह वेश्या होती है, क्योंकि संरक्षण के लिए उसे बहुतों पर निर्भर रहना पड़ता है, नतीजे में सामाजिक सम्मान का प्रश्न ही नहीं उठता।"[3]

महिला स्वावलंबन और समाज

जब तक महिलाएँ सशक्त नही होगीं तब तक महिलाओं का विकास बहुत मुश्किल है। जब भी महिला सशक्तिकरण की बात होती है, तो सभी के मस्तिष्क में महिलाओं की ऐसी छवि सामने आती है जो अपने सभी कार्य करने में स्वयं सक्षम है तथा परिवार, समाज, एवं राष्ट्र के लगभग सभी कार्यों में अपने आप को ढाल लेती है। मल्लिका सेनगुप्त अपनी पुस्तक स्त्रीलिंग निर्माण में इसी प्रकार से कुछ वर्णन करती है कि "निरंकुश और महाप्रतापी पितृसत्ता का कोपभाजन बनकर जोन ऑफ आर्क, रजिया सुलतान, आन्तिगोने जैसी नारियाँ जब आग में जलकर मरती हैं तो हम जैसी आज की महिलाएँ भी इससे पार नहीं पा सकती। हर पल उठती आग की लपटें हमे झुलसा रही हैं। हमारी देह में फफोले पड़ रहे हैं। वोल्गा ब्रोउमास की तरह मुझे भी यकीन है।

आग में धधकती इस धरती पर
हमें खोजनी होगी अपनी भाषा
वरना जल-जलकर मरना होगा।"[4]

इतिहास में महिलाएँ पारिवारकि बंधन में जकडी हुई थी। पितृसत्ता के दायरे में रहकर ही महिलायें अपने कार्यों करती थीं। जैसे-जैसे महिलाएँ शिक्षित हुईं वैसे-वैसे महिलाएँ स्वावलंबी भी हुई हैं। यह आत्मनिर्भरता भारतीय समाज को मजबूती प्रदान करती है। यहाँ इस बात पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है कि महिला स्वावलंबन होना उसकी मजबूती को दर्शाता है। पितृसत्तात्मक समाज यह कभी स्वीकार नही कर सकता कि महिलाएँ आत्मनिर्भर बने। पितृसत्तात्मक समाज हमेशा से महिला

सशक्तिकरण के खिलाफ रहा है। पितृसत्तात्मक समाज केवल और केवल महिलाओं को भोग्य एवं बेचारी ही रखना चाहता है। प्रसिद्ध लेखिका संतोष श्रीवास्तव अपनी पुस्तक मुझे जन्म दो माँ में लिखती हैं, "पितृसत्तात्मक समाज कहता है कि पत्नी को एक दासी की तरह पति की और पति के परिवार वालों की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर देना चाहिए। मिताक्षरा में यही कहा गया है। वैसे मनु बहुत चतुर थे। शकुनि की तरह पासा फेंकने में उस्ताद। उन्होंने नारी के बारे में जमकर अनाप-शनाप लिखा और फिर यह कहकर उस अबला का मुँह बंद कर दिया कि य नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता और यह भी कि जिस कुल में कुलवधू चिंतग्रस्त रहती है उस कुल का शीघ्र नाश हो जाता है।"[5]

किसी परिवार एवं समाज में अगर कोई महिला आत्मनिर्भर या स्वावलंबी होती है तो उसकी वजह से पूरे परिवार की स्थिति ठीक हो जाती है। क्योंकि यह बात सभी जानते हैं कि किसी भी परिवार एवं समाज का प्रमुख स्तम्भ महिला ही होती है। एक महिला ही प्रथम शिक्षिका होती है। महिला को आत्मनिर्भर होना इसलिए आवश्यक है कि समाज में सही-गलत के अंतर को समझकर समाज के और देश के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान दें।

महिलाएँ और आर्थिक सशक्तिकरण

आर्थिक स्थिति ठीक होने से वर्षों से जो महिला पुरुष वर्ग के सामने लाचार रही है उसे गुलामी से निजात मिलेगी। आर्थिक सशक्तिकरण से महिलाओं में नया संचार और आत्मनिर्भरता का सर्जन होता है। यह आत्मनिर्भरता वर्षों से दबी उस पुरुष मानसिकता पर चोट है, जिसने कभी महिलाओं को समाज के लिए उपयोगी नहीं माना। पुरुष समाज महिलाओं के नौकरी या घर की चार दीवारी से निकल कर कुछ नया करने के एकदम खिलाफ रहा है। इस विषय में राधा कुमार लिखती हैं, "उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों की भारतीय स्त्रियों के कष्टों और उनके सुधार की आवश्यकता की परिभाषा बीसवीं सदी के आरम्भ तक बदल गई तथा सारा ध्यान स्त्रियों को समाज का उपयोगी सदस्य समझने पर केंद्रित हो गया और बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक महिलाओं को अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेने के अधिकार की मांग उठाई गई।"[6]

पितृसत्तात्मक समाज की जड़ें इतनी गहरी हैं कि वर्षों से चला आ रहा संघर्ष आज भी जारी है। फर्क इतना आया है कि आज की महिलाएँ शिक्षा के माध्यम से जागरुक हुई हैं तथा अपना एवं अन्य दूसरी महिलाओं का भी उत्साह बढा रही हैं। इन सब से समाज में भी एक नए जोश एवं उमंग का उत्साहवर्धन होता है। महिलाओं का व्यवसाय एवं नौकरी आर्थिक मजबूती ही नही बल्कि महिलाओं के स्वाभिमान को भी बनाए रखती है और इसी स्वाभिमान के साथ समाज को एक नई दिशा देती है। पहले महिलाओं को छोटे-मोटे कार्यों के लिए घर एवं परिवार के पुरुषों पर निर्भर रहना पडता था। आर्थिक पक्ष के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण है कि अगर वह कमाती है तो उसकी आर्थिक स्थिति बेहतर बनती है। आर्थिक रूप से महिलाएँ मजबूत होंगी तो उससे उनमें सबसे पहले आत्मसम्मान आएगा।

महिला सशक्तिकरण और पथ की बाधाएँ

पितृसत्तात्मक समाज में सभी अधिकार और फैसले करने का जिम्मा पुरुष वर्ग पर होता है। इसमें यह मायने नही रखता की वह पुरुष बाप, भाई, बेटा या पति है। इसमें पुरुष होना प्रमुख गुण है। यही पुरुष समाज को काबू में करता है

और घर परिवार के मसौदे तैयार करता है। सभी संचालन की क्रियाएँ इसी पुरुष वर्ग को सौंपी जाती है। घर-परिवार के कायदे कानून इसी पुरुष वर्ग के हाथ में होते हैं और कठपुतलियों की भाँति वह चाहे जिस प्रकार सभी पारिवारिक सदस्यों को अपने हाथों से नचा सकता है। खासकर घर की महिलाओं को। राजेन्द्र यादव जी ने 'आदमी की निगाह में औरत' में लिखा है "भारतीय समाज में न नारी का अपना कोई व्यक्तित्व रहा है, न जाति। वह ऐसा रत्न है जिसे कहीं से भी उठाया जा सकता है और जिसके पास है उसी की सम्पत्ति है। वे व्यक्ति नहीं, चीज हैं, जिन्हें लूटा, छीना और नष्ट किया जा सकता है, खरीदा और बेचा जा सकता है।"[7]

चूँकि परिवार का मुखिया यही पुरुष होता है तो परिवार की सारी व्यसस्था इसी के हाथ में होती है। वह व्यवस्था फिर चाहे बेबुनियाद या असंगत ही क्यों न हो। परिवार की यह नीति महिला सशक्तिकरण के एकदम विपरीत है तथा मुख्य बाधा यहीं से आती है। इस व्यवस्था में महिलाएँ पुरुष बन्धन में बंधने के लिए विवश होती हैं। शायद उसका प्रमुख कारण स्कूली शिक्षा तथा विशेषकर पारिवारिक शिक्षा होती है। बचपन से ही भारतीय समाज के अधिकतर हिस्सों में यही बताया और सिखाया जाता है कि पति का घर ही सब कुछ है। शादी होने के बाद ससुराल पक्ष का ही सारा अधिकार है ससुराल वाले जो भी निर्णय लेगें तुम्हे मानना होगा तथा बिना विरोध किए सब कुछ सुनना और सहना होगा।

भारतीय समाज में अक्सर देखा जाता है कि कम पढ़े-लिखे युवक के साथ एक शिक्षित युवति की शादी कर दी जाती है कारण चाहे गरीबी, सुंदरता, घरेलू दबाव या कोई दूसरा रहा हो। यह भारतीय समाज में आज भी चलन में है।

निष्कर्ष

कोई भी देश स्त्री को नजरअंदाज कर आगे नही बढ सकता। बिना महिला सशक्तिकरण के कोई भी समाज कभी उन्नति नही कर सकता। महिलाओं की भागीदारी से नवराष्ट्र का निर्माण होता है। देश में महिलाओं से बात शुरू हो और उन्हें समाज में बराबर का दर्जा हासिल हो। पिछली और पौराणिक मान्यताओं पर देश आगे न बढ़े। भूमण्डलीकरण के इस दौर में समस्त विश्व एक छत के नीचे सिमट गया है। समाज को संवैधानिक तरीके से आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 नवजागरण और स्त्री, मीना शर्मा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 62

2 भारतीय समाज में महिलाएँ, नीरा देसाई, ऊषा ठक्कर, अनुवाद, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 1

3 आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, राजकमल पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 19

4 स्त्रीलिंग निमार्ण, मल्लिका सेनगुप्त, रेमाधव पब्लिकेशन प्रा.लि., प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ 27

5 मुझे जन्म दो माँ, संतोष श्रीवास्तव, कल्याणी शिक्षा परिषद, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ 51

6 स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1900, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2011, पृष्ठ 15

7 आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, राजकमल पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 33